International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Volume 02, No. 01, January - March, 2020, pp.190-192

# c) dkyhu lekt vkj vkfFkd 0;oLFkk

डॉ॰ सतीश कुमार*

**परिचय**

मानव सभ्यता के उतरोत्तर विकास में आर्थिक व्यवस्था का अभूतपूर्व योगदान रहा है। किसी भी देश का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक, सम्मुन्नति तभी संभव है जबकि उसकी आर्थिक व्यवस्था संबंधित स्त्रोतों पुरी तरह से विकसित हों। नहीं तो वहां निवास करने वाली जनता का सभ्यता एवं संस्कृति का समुचित विकास का कल्पना करना उचित नहीं है। मानव जाति का विकास का यह प्रमाण है प्राचीन काल में वहीं जातियाँ सभ्यता और संस्कृति का विकास कर सकी जो कृषि योग्य मैदानी भूमि एवं पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करती थी। दुसरा की जहाँ नदियाँ और समुद्र द्वारा व्यापारिक यात्रा करने की सुविधा प्राप्त थी। किसी भी देश या राष्ट्र में जीवन के प्रमुख उद्देश्यों जैसे–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसलिए कौटिल्य ने समाज के नियमन के लिए जिस शास्त्र की रचना किया उसका नाम धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र या नीतिशास्त्र न रहकर अर्थशास्त्र रखा क्योंकि सभी सामाजिक व्यवस्थाओं का समाहार अर्थव्यवस्था में समाहित ही होता है।

विनय, सूतपिटक और जातक बौद्ध ग्रन्थों में आर्थिक तथा सामाजिक अवस्थाओं के प्रासंगिक उल्लेख मिलते हैं। त्रिपिटक कालीन अर्थव्यवस्था का विश्लेषण यह है कि मानव स्वभाव परिस्थिति प्रेरित परिवर्तन– धर्म होने के कारण वैदिक युग के बाद आर्थिक क्षेत्रों में अद्भूत आप्लावन एवं प्रभंजन दिखाई पड़ा। यह क्रांतिकारी परिवर्तन का परिचायक था। अतः पूर्णरूप से समाजवादी वैदिक समाज में पुंजीवाद का उद्भव हुआ।

## df"k ,oa i'kqikyu

वैदिक साक्ष्यों से यह ज्ञात होता है कि कृषि व्यवस्था का विकास पर्याप्त मात्रा में हो चुकी थी। ऋगवेद, यर्जुवेद और अर्थववेद के अनेकों सुक्तों में कृषि कार्य या कृषि संबंधी यंत्रों का उल्लेख मिलता है। यर्जुवेद में कृषक द्वारा जौ की खेती करने एवं जंगली हिरणों द्वारा फसल को चरने का उल्लेख मिलता है।[1]

ऋग्वेद के एक सुक्त से ज्ञात होता है कि ऋग्वैदिक काल में हल से खेती किया जाता था। हल से खेत जोतकर बीज डाला जाता था। तथा फसल तैयार होने पर हासिया से काटा जाता था। तथा पशुओं को जल पीने के लिए जलाशय, या जलकुण्ड का भी निर्माण करने का उल्लेख मिलता है जलाशयों एवं जलकुण्डों से पानी निकालने के लिए रस्सी के स्थान चमड़े की रस्सी द्वारा जल निकाला जाता था। साथ–साथ बैलों को खाने के लिए नाद का भी प्रयोग का प्रमाण मिलता है। फसलों को काटकर बैलगाड़ी एवं रथ द्वारा ढोकर एक स्थान पर रखा जाता था, जिसे खलिहान कहा गया है। इस काल में पेयजल के लिए कुएँ बनाये गये थे, पानी खींचने के लिए 'मसक' या धातु के पात्र का प्रयोग का भी प्रमाण मिलता है। जानवरों के रहने के लिए गोष्ठ बनाये जाते थे, जिसे गोशाला के नाम से जाना गया है, दुध प्राप्ति हेतु गायों को पालने की भी आवश्यकता थी। तथा लकड़ी एवं पाषाण के घरेलू पात्र एवं यंत्र बनाये जाते थे।[2]

'यर्जुर्वेद' में भी कृषि कार्य का विशद वर्णन हुआ है, उससे ज्ञात होता है कि इस काल में खेती करने की पद्धति बिल्कुल विकसित अवस्था में पहुंच चुकी थी। जो ऋग्वेद के वर्णनों से बिल्कुल मिलता जुलता है।

* एम॰ए॰, पीएच॰ डी॰ (इतिहास), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार।

पाली साहित्य से ज्ञात होता है कि भूमि संबंधी करों में 'राज बलि' प्रमुख था।[3] बलि के चार रूप पालि साहित्य में मिलता है– (1) निश्चित एवं निर्धारित भाग के रूप में (2) स्वेच्छा से प्रदत्त उपहार के रूप में (3) बलि अतिरिक्त एवं दमनकारी के रूप में। बलि के रूप में 1/6 भाग निश्चित था रज्जुक भूमि का माप कर राज भाग निर्धारित करते थे। द्रोण मापक, अम्मक एवं निग्गाहक अनाज में से इमानदारी से राजभाग वसुलते थे। तूण्डीय एवं आकाशीय दो अधिकारी कर वसुली का कार्य करते थे। त्रिपिटकों से तत्कालीन अर्थव्यवस्था के मूल पर अत्यन्त प्रकाश पड़ता है। कृषि के कर्णधार कृषक जाति समृद्ध, साधारण, एवं गरीब सभी श्रेणी के किसान थे।

पालि साहित्य में कृषकों को अस्मक, खेतपति, खेतपाल के नामों से जाना गया है। जो अनेक भागों में बंटे हुए थे। खेती की 'माप' विभाजन, सीमाबद्धता, राजकीय संरक्षण में सुव्यवस्थित रूप में थी। तात्कालीन कृषक अपने समस्त उपादानों मुख्य रूप से (हल बैल) तथा गौण से लाभान्वित होते थे।[4] व्यवस्थित कृषि पद्धति क्रमशः चरणबद्ध तरीके में थे। जैसे– जुताई, बुआई, सिंचाई, निराई, रखवाली, कटाई, मर्दन, पराली, आदि। वर्तमान समय के समान उस काल में भी फसलें–बरसाती शीतकालीन एवं वासन्तिक होती थी। तत्काल वर्षा एवं नदी का पवित्र जल सिंचाई के प्राकृतिक साधन ही प्रमुख साधन थे। इसके अलावे कृत्रिम साधन जैसे– तालाब, पुस्करणी, कुआँ, नहरों बाँधों का प्रयोग भी उस युग की विलक्षणता का द्योतक रहा है।[5] बौद्धकाल में पशुपालन व्यवसाय का मूलभूत साधन था। आरण्य पशुओं की श्रेणी में (हिरण, सिंहादि) थे। ग्राम्य पशु एक ओर राज्य संरक्षित थे। इनमें मृग हस्ति, ऊँट आदि थे। वहीं गोपालक संरक्षित पशु (गाय, बैल, भैंस, बकरी, भेड़) इत्यादि।[6] पशुपालक व्यवसाय भी विकसित अवस्था में था। पक्षी पालन व्यवसाय भी विकसित अवस्था में था। त्रिपिटक से प्रतीत होता है कि अर्थव्यवस्था का आधार कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त व्यापार एवं उद्योग धंधे का भी विकास हो चुका था।

0;kikj ,oa m|kx /kU/k

जैसे– शिल्प, सुगम कला एवं हस्तकला का सामुहिक संबोधन था। यह जीविकोपार्जन का एक अच्छा उदाहरण पेश करता है।[7] शिल्पी सामुहिक एवं स्वतंत्र दोनों रूप से अपना जीवन–यापन किया करते थे। व्यवसाय एवं उद्योग की दृष्टि से पाली साहित्य में ऐसा वर्णन मिलता है कि 18 शिल्पी व्यवसायिक रूप से प्रख्यात थे।[8] जैसे– कष्कार, धातुकार, पाषाणहार, जुलाहे–चमार, कुंभकार दंतकार, रंगरेज स्वर्णकार, मछुआरे वचरस, शिकारी रसोईया नाई, माली, सेलरस तथा टोकरी बनाने वाले– चित्रकार" आदि समस्त धन्धे कुटीर स्तरीय पूरी तरह से विकसित एवं उन्नत अवस्था में था। आर्थिक दृष्टि से सामुदायिक रूप से अलग–अलग श्रेणी में विभक्त था। पालि साहित्य में (सेणी) शब्द का प्रयोग हुआ जिसका तात्पर्य श्रेणी से है।[9] व्यापारिक श्रेणीयों के अलावे व्यावसायिक भी दृष्टिगोचर होती है। व्यवसायिक श्रेणी के लोग बाह्य रूप से उत्तराधिकारी तथा स्थानीकरण की प्रथा पर आधारित थी। भूमि राष्ट्रीय सम्पत्ति थी। राष्ट्र प्रधान होने के कारण राजा समस्त भूमि का सैद्धान्तिक रूप से स्वामी होता था। परन्तु व्यवहारिक तौर पर कृषक भूमि का वास्तविक मालिक होता था। त्रिपिटक से ज्ञात होता है कि वाणिज्य एवं व्यापार, अलग–अलग रूप से विभक्त थे– जिससे स्थानीय एवं प्रादेशिय स्तर पर आयात–निर्यात होता था। स्थानीय व्यापार, राजपथ, महापथ, तथा उपपथों के माध्यम से होता था।[10] बाहरी व्यापार के दौरान कान्तार एवं अप्रशस्त मार्ग का सामना करना पड़ता था।[11] भारत का वैदेशिक संबंध एशिया तक था। मध्यपूर्व एशिया में भारत का संबंध मुख्य रूप से ग्रीक, ग्रीस एवं रोम से था। इन केन्द्रों तक पहुंचने के लिए सामुद्रिक, एवं स्थलीय मार्ग तथा नदियों का प्रयोग हुआ करता था। पालि साहित्य में ऐसा संकेत मिलता है विनिमय का मुल आधार सिक्का था।[12] जो अलग–अलग धातु के बने होते थे स्वर्ण, रजत एवं (ताम्र) से बने हुए सिक्के थे प्रचलन में थे। बौद्ध साहित्य में तत्कालीन बांट एवं माप का भी उल्लेख किया गया है। जैसे–पल, प्रसत्रि अंजलि आदि प्रचलन में थे।[13] बौद्ध काल अर्थव्यवस्था का काल माना गया था। जिससे पूंजी का संकलन होता था। जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पुर्ति के लिए धनी व्यक्ति के पास गहने एवं कीमती धातु गिरवी के रूप में रखा करते थे।[14] ऋण व्यवस्था का भी उल्लेख पालि साहित्य में मिलता है जो काफी ऊँचे दरों पर प्राप्त किया जाता था।

साथ–साथ राजस्व व्यवस्था समाज की आर्थिक पक्ष को पोषित करने का आधार है, जो प्राचीन काल से वर्तमान समय तक लागू है, जो अन्य क्षेत्रों से आती है, जैसे भूमि कर, जुर्माना उद्योग कर वाणिज्य कर, सम्पत्ति कर आदि तरह–तरह का कर व्यवसाय के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास संभव हुआ। किसी प्रदेश या राष्ट्र का समुचित विकास की कल्पना तभी संभव है, जब मानव निर्मित संसाधन, एवं प्रकृति प्रदत्त वातावरण मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति करने में मेरूदण्ड का द्योतक हैं जैसे– समय से वर्षा का होना जिससे अच्छी फसल पैदावार में वृद्धि हो कृषि के क्षेत्रों में परिवर्तन हो, कुटीर उद्योगों का अधिक संख्या में बढ़ोतरी हो जिससे लोगों के बेरोजगारी को नियंत्रित किया जा सके और सभी को रोजगार उपलब्ध हो। जिससे भूखमरी, चोरी, व्यभिचार शोषण, जैसे वातावरण से हर समाज एवं वर्ग निजात पा सके। अतः बुद्ध कालीन अर्थ व्यवस्था एक सामान्य प्रणाली पर आधारित व्यवस्था थी, शेष प्रतिकुल सामाजिक वातावरण को बुद्ध अपने उपदेशों के माध्यम से दूर करने का संदेश दिया, जो सत्य एवं अहिंसा का पाठ पढ़ाया। जो पूरे विश्व के लिए अनुकरणनीय है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बौद्ध कालीन अर्थव्यवस्था मानवीय समाज की विभिन्न पहलूओं को उद्वितमान करता है। इसलिए तत्कालीन समाज दो आर्थिक धाराओं का संगम माना गया है जो एक ओर विपलुता का संगम था, तो दुसरी ओर विकलता थी। इसी वातावरण के बीच विकार पनप रहा था, इसलिए इस अर्थव्यूह में तत्कालीन समाज पुँजीवाद में रिसता जा रहा था। अतुल संपदा के स्वामी, राजा सेटटि एवं ब्राह्मण आदि थे। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भगवान बुद्ध के समय में लोग अपनी जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न प्रकार के उद्यम किया करते थे।

## I nHk xUFk I ph

1. मार्टिनमोर व्हीलर, दि इण्डस सिविलाइजेशन, कैम्ब्रिज– 1953, पृ0 9
2. वही पृ0 67.
3. यजुर्वेद अध्याय 23, पृ0 31–38
4. ऋग्वेद 10/9/102, 4/7
5. यजुर्वेद, पृ0 अ0 12, 68–70
6. डॉ0 शम्भुनाथ सिंह पुराकल्प, ऋग्वेदकालीन जातियाँ एवं उनका मूल निवास स्थान, वर्ष–1 अंक– 7 पृ0 69–75
7. ऋग्वेद, 4/35/1.
8. वही, 5/21/41.
9. वही, 5/60/4.
10. वही, 5/77/3.
11. वही, 6/47/23.
12. वही, 9/7/112.
13. ऋग्वेद, 9/7/3.
14. वही, 1/67/4.
15. वही, 8/102/8
16. वही, 9/121/11
17. वही, 4/2/17
18. विनयपिटक, महावग्ग पृ0 135.
19. जातक भाग–3, 2 6 8. पृ0 070.
20. अंगुतरनिकाय, भाग– 1. भाग पृ0 249.